International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 03(II), July - September, 2022, pp. 113-119

विद्यार्थी आंदोलन एवं विश्वविद्यालय संचालन के कुछ पहलू

डॉ. बाबूलाल बिजारनियाँ*

सार

विद्यार्थी आन्दोलन से सम्बद्ध किसी भी सिद्धान्त, परिकल्पना या मान्यता का जैसा का तैसा उपयोग करने में अनेकों कठिनाइयाँ हैं। वैसे भी विद्यार्थी समुदाय की गतिविधियों में भिन्नता, तात्कालिकता तथा अनिश्चितता की प्रवृत्ति रहती है। विद्यार्थी आन्दोलन सुसंगठित समूहों द्वारा संचालित हो सकते हैं। आन्दोलन की अपनी शर्ते होती हैं। फुटकरिया हिंसा, लम्बा संघर्ष या व्यापक जनसमर्थन में से कोई भी आन्दोलन की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। विद्यार्थी आन्दोलन इस कसौटी के अनुसार प्रतिवादी आन्दोलनों की श्रेणी के घटनाक्रम होते हैं। प्रतिवाद आन्दोलन का कार्यक्षेत्र और प्रभाव क्षेत्र दोनों ही सीमित होता है। ऐसे आन्दोलन में बिना किसी औपचारिक संगठन के अनेकों समूह समान लक्ष्य के लिए सक्रिय हो सकते हैं। किन्तु औपचारिक संगठन के द्वारा संयोजित प्रतिवाद आन्दोलन समूह में निहित दबाव के प्रयोग की क्षमता रखते हैं। इनका समाजमूलक आन्दोलन अर्थात् बुनियादी परिवर्तनों के लिए व्यापक जन आन्दोलनों में भी विकास सम्भव है। बिना समाजमूलक जन आन्दोलन बने कोई भी प्रतिवाद आन्दोलन प्रभावशाली समूह की स्थिति तक विकसित होने के बाद भी स्वयं एक पूर्ण राजनीतिक कार्यक्रम और विचार दर्शन के वहन या निर्माण की क्षमता नहीं रखते।

शब्दकोशः *विद्यार्थी आन्दोलन, अनिश्चितता की प्रवृत्ति, औपचारिक संगठन, प्रतिवाद आन्दोलन।*

प्रस्तावना

विद्यार्थी आन्दोलन की सही अर्थों में एक निर्देशित आन्दोलन होने की क्षमता विवादास्पद है। औपचारिक नेतृत्व, संगठन, निश्चित लक्ष्य, किसी विचारदर्शन से खुला लगाव और एक निश्चित कार्यक्रम का अनुसरण कुछ विद्यार्थी करते हैं। ऐसे विद्यार्थियों की आन्दोलनों में सक्रिय हिस्सेदारी भी रहती है। लेकिन औसत विद्यार्थियों में सीमित तथा तात्कालिक परिवर्तनों की आकांक्षा के कारण विद्यार्थी आन्दोलन का पूर्णतः निर्देशित आन्दोलन का रूप लेना कठिन पाया गया है। सम्भवतः इसीलिए एक घटना श्रृंखला के दौरान अनेकों विद्यार्थी संगठनों का विकास होता है। किन्तु अधिकांश का प्रभाव और प्रासंगिकता उक्त विशिष्ट घटनाक्रम के बाद घटने लगती है।

आन्दोलन की समाजशास्त्रीय परिभाषा में निहित लक्षणों को विद्यार्थी आन्दोलन के सन्दर्भ में जोड़ने पर प्रतीत होता है कि विद्यार्थी होने के समूह हित के लक्ष्यों के लिए समूह चेतना के आधार पर विद्यार्थियों द्वारा किये गये परस्पर सम्बद्ध कार्यों की घटना श्रृंखला ही विद्यार्थी आन्दोलन है। इस प्रकार किसी भी घटनाक्रम को विद्यार्थी आन्दोलन मानने के लिए (क) लक्ष्यों का विद्यार्थियों की दृष्टि में समूह हित साधक होना (ख) घटनाओं

* समाजशास्त्र विभाग, भारतीय महिला महाविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

की पृष्ठभूमि में समूह चेतना और (ग) विद्यार्थियों द्वारा किये गये कार्यों में परस्पर सम्बद्धता की आवश्यकताएं पूरी होनी चाहिए अर्थात् (1) घटनाश्रृंखला की पृष्ठभूमि (2) कारण (3) उद्देश्य (4) वाहन (5) नेतृत्व (6) रणनीति (7) आकार (8) समर्थक (9) प्रतिपक्षी (10) अवधि और (11) परिणाम। विद्यार्थी आन्दोलन के स्वरुप के ग्यारह मूल तत्व कहे जा सकते हैं।

एक दृष्टि में विद्यार्थी आन्दोलन को परिभाषित करना कठिन मानते हुए भी कहा गया है कि विद्यार्थी आन्दोलन समान, सामान्यतया राजनीतिक लक्ष्यों से प्रेरित विद्यार्थियों का समूह है। यह भावनात्मक अनुभूतियाँ (प्रायः अन्तरपीढ़ी द्वन्द्वों से जुड़ी) तथा कभी– कभी स्पष्ट उद्देश्यों द्वारा प्रेरित हुआ करती है। आन्दोलनकारी विद्यार्थियों का विश्वास है कि पुरानी पीढ़ी समाज की अनेकों कमियों को दूर करने में असफल रही है। नयी पीढ़ी का सचेत सदस्य होने के नाते पुरानी पीढ़ी के अधूरे कार्यों को पूरा करना उनकी विशेष जिम्मेदारी है। इस प्रकार विद्यार्थी आन्दोलन बौद्धिक विश्वासों तथा भावनात्मक प्रतिउत्तर का समन्वय है।

''विद्यार्थी शक्ति'' की अवधारणा के प्रतिपादकों की दृष्टि में विद्यार्थी आन्दोलन एक स्वीकारी जा चुकी व्यवस्था अथवा अपनाए जा चुके परिवेश के अन्तर्गत समूहहितों की रक्षा तथा बढ़ोतरी के लिए रचित दबाव समूह होता है। यह दृष्टि ऐसे सभी घटनाक्रमों की उपेक्षा करती है जो प्रदत्त संरचना के प्रतिकूल यथास्थिति विरोधी माँगों से जुड़े हों।

यथास्थिति किस सीमा तक सुधारों को पचा सकती है, यह जानना कठिन है। यथास्थिति को प्रभावित करने में बुनियादी तत्व सत्ता की मात्रा में घटाव–बढ़ाव है। सत्ता असमान विनिमय(गैर बराबर अदला–बदली) तथा हितसाधन क्षमता में समानुपात न होने से उत्पन्न होती है। विद्यार्थी आन्दोलन विश्वविद्यालय की सत्ता संरचना और सत्ता वितरण की प्रचलित व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह है। हर आन्दोलन विश्वविद्यालय की सत्ता संरचना को प्रभावित करता है। विद्यार्थी आन्दोलन के फलस्वरुप सत्ता वितरण में होने वाले परिवर्तनों का सम्मिलित प्रभाव एक सीमा के बाद यथास्थिति में भी बुनियादी बदलाव लाता है। अतः यह मानना सतही है कि समस्त विद्यार्थी आन्दोलन मूलतः दी हुई व्यवस्था के अन्तर्गत ही हित साधन की दृष्टि से रचे गए दबाव समूह होते हैं फिर भी यह परिभाषा विद्यार्थी आन्दोलन के अनिर्देशित चरण और प्रतिमानी प्रकारों की कामचलाऊ व्याख्या कर सकती है।

असल में विद्यार्थी आन्दोलकरकारियों के सामने कुल चार विकल्प हुआ करते हैं:

एक, औपचारिक शिक्षा और प्रशिक्षण को किसी और स्रोत जैसे समान्तर विश्वविद्यालय, अन्य शिक्षा केन्द्रों आदि से प्राप्त करें। दूसरे, औपचारिक शिक्षा के बिना ही जीवन निर्वाह करें। तीसरा, शक्ति के जरिये विश्वविद्यालयों की मान्यता (औपचारिक शिक्षा की उपाधि सनद आदि) को हासिल करें। और चौथे, विनिमय (अदला–बदली) के प्रचलित रिश्ते को बदलने के लिए व्यवस्था के सत्ता संचालकों से अन्य नये सम्बन्धों का विकास करें।

विद्यार्थी आन्दोलन को विद्यार्थियों द्वारा समूह हित साधक लक्ष्यों के लिए समूह चेतना पर आधारित परस्पर सम्बद्ध घटनाक्रम के रूप में परिभाषित करने में निहित कुछ अन्य तथ्यों का उल्लेख इस वक्तव्य को और पुष्ट तथा स्पष्ट करेगा।

विद्यार्थी आन्दोलन का विद्यार्थी हित के लक्ष्यों से जुड़े होने की आवश्यकता के सन्दर्भ में यह नोट करना चाहिए कि समाजशास्त्रीय भाषा में विद्यार्थी आन्दोलन एक प्रतिवाद आन्दोलन है। कोई भी प्रतिवाद आन्दोलनकारी समूह समूची समाज व्यवस्था की बजाय उक्त समूह विशेष के हितों से सम्बद्ध सामाजिक व्यवस्था के पहलुओं तक ही अपनी दृष्टि रखता है, परिवर्तन और सुधार चाहता है। लेकिन किसी एक समस्या के बारे में आन्दोलन के दौरान समाज के अन्य समूहों द्वारा उसी समस्या के कुछ अन्य पहलुओं पर आन्दोलित होने की स्थिति में अपने आन्दोलन को सशक्त बनाने के लिए अपनी मांगों तथा दृष्टि में विस्तार अवश्य मुमकिन है। जैसे

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, भ्रष्ट सरकार, बेरोजगारी, महंगाई आदि। ऐसी स्थिति में उक्त आन्दोलन मात्र एक समूह का न होकर सभी हिस्सेदार समूहों (जैसे विद्यार्थियों, मजदूरों, किसानों, सरकारी कर्मचारियों, छोटे दुकानदारों आदि) का मिला–जुला आन्दोलन होगा।

इस प्रकार विद्यार्थी आन्दोलनों की लक्ष्मण रेखा विद्यार्थी हित से जुड़े लक्ष्य हैं।' विद्यार्थी हित की समझ विद्यार्थियों की अपने पर्यावरण और समकालीन आर्थिक–सामाजिक परिस्थितियों के बीच से बनती है। किसी भी माँग का विद्यार्थी हित साधक होना सार्वभौमिक सत्य नहीं है। समूहों की हित साधक माँगों का औचित्य और तार्किकता पर्यावरण में प्रचलित मूल्यों–प्रतिमानों से जोड़कर आंका जाता है। सामाजिक पर्यावरण में मूल्यों और प्रतिमानों के प्रति सर्वसम्मति नहीं रहती। एक ही मूल्य या प्रतिमान के लिए, अलग–अलग सामाजिकआर्थिक पृष्ठभूमि की व्यक्तियों में विभिन्न दृष्टियाँ पायी जाती हैं। फलतः सत्ताधारी समूहों द्वारा स्वीकृति ही प्रचलन के लिए अनुमोदन और संरक्षण उपलब्ध कराता है। सत्ताहीनों अथवा सत्ता संरचना और प्रचलित विनिमय से हानि उठा रहे उपसमूहों द्वारा सत्ता प्रतिष्ठान की बजाय अपने हित साधक मूल्यों और व्यवस्थाओं की वृहत् समाज द्वारा स्वीकृत कराने का प्रयत्न निरन्तर चलता है। इस प्रयत्न की सफलता पर्यावरण की शक्तियों से निकट सम्पर्क के जरिये सहानुभूति अर्जित करने और अपने आन्दोलन के लिए व्यवस्था विशेष के शेष उपसमूहों से समर्थन की उपलब्धि पर निर्भर करती है। नेतृत्व की भूमिका इसी बिन्दू पर निर्णायक कारक है। यदि विद्यार्थी आन्दोलन का नेतृत्व (क) अन्य उप समूहों जैसे कर्मचारियों, अध्यापकों आदि से परस्पर सहयोग का सम्बन्ध स्थापित करने और (ख) पर्यावरण की प्रभावशाली शक्तियों जैसे राजनीतिक दल, समाचार पत्र, विभिन्न जन संगठन विभिन्न समूहों आदि से संवाद सहानुभूति और सहायता अर्जित करने की जरुरतों की उपेक्षा करता है, तो निश्चय ही हित साधन की सम्भावना धूमिल होगी अन्यथा नेतृत्व द्वारा पूरे आन्दोलन की रणनीति अधिकाधिक अनुकूल वातावरण बनाने के लक्ष्य से गढ़ी जाती है जिससे जनमत का अधिकांश हित समूह की मांगों का समर्थन करें और प्रतिपक्ष की शक्ति निरन्तर घटती जाए।

किसी भी आन्दोलन में उद्देश्य और आकार एक दूसरे के परिपूरक हैं। फिर भी विद्यार्थी आन्दोलन के लिए इनका महत्व अन्य प्रतिवादी आन्दोलनों की तुलना में ज्यादा होता है। विद्यार्थी आन्दोलन अपनी निषेधक क्षमता के आधार पर ही समूह हित साधन की चेष्टा करता है। किसी निश्चित और सीमित व्यवसाय, आर्थिक वर्ग और सामाजिक पृष्ठभूमि की बजाय विभिन्न व्यवसायों, वर्गों और पृष्ठभूमियों से नई पीढ़ी के युवजन विद्याकेन्द्रों में विद्यार्थी रहते हैं। फलतः इनका आन्दोलन समाज के सभी अंगों से सहानुभूति और सक्रिय समर्थन प्राप्त करने की क्षमता रखता है। यदि एक विद्यार्थी आन्दोलन अपनी मांगों के लिए समाज के अन्य हिस्सों को भी संलग्न कर लें तो मांग पूर्ति के लिए जिम्मेदार वर्ग के लिए आन्दोलन की उपेक्षा करना अराजकता के दायरे को विस्तार का पर्यायवाची बन जाएगा। इसी प्रकार अन्य समूहों को आकर्षित करने की क्षमता रखने वाले उद्देश्यों की भी प्राप्ति मात्र विद्यार्थी हितों से सम्बद्ध सवालों की तुलना में शीघ्रतर हुआ करती है। क्योंकि आन्दोलन को लम्बी अवधि तक चलना अन्य समूहों का भी उन उद्देश्यों के लिए विद्यार्थियों के आन्दोलन से जीवन्त सम्बन्ध बनाएगा। इसी प्रकार लम्बी अवधि तक चलने वाले आन्दोलन तात्कालिक असफलता के बावजूद कई नये आन्दोलनों को चलाने में सक्षम शक्ति तथा प्रशिक्षण प्रदान किया करते हैं। जबकि अल्पावधि के आन्दोलनों की तात्कालिक सफलता के बावजूद नए आन्दोलनों की पृष्ठभूमि बन पाना बहुत निश्चित नहीं रहता। इस प्रकार इन विश्वविद्यालयों के रहते विद्यार्थियों का संचालकों से भिन्न प्रकार का हित समूह होने का तथ्य भी जारी रहेगा। विश्वविद्यालय व्यवस्था के कारण संचालकों, अध्यापकों, कर्मचारियों और विद्यार्थियों का विभिन्न हित समूह बने रहना विद्यार्थी आन्दोलन की उत्पत्ति, असफलता, सफलता, और पुनरावृत्ति की गंगोत्री है। इस दृष्टि से आन्दोलन विद्यार्थियों की हित रक्षा का न सिर्फ साधन है बल्कि साध्य भी है।

विश्वविद्यालय संचालन – कुछ पहलू

विश्वविद्यालय संचालन की अवधारणा सामाजिक संगठनों की विशिष्टता और विश्वविद्यालय व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रचलित दृष्टियों की चर्चा के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी है। इसलिए पहली बातें पहले रखी जाएगी।

विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के नियमन के लिए संचालित संगठन है। कोई भी संगठन अपेक्षाकृत जटिल अन्तक्रिया व्यवस्था होता है। संगठन के सदस्यों की अन्तक्रिया व्यवस्था में स्थायित्व की मात्रा संगठन के संचालन और संरचना पर अन्य प्रक्रियाओं तथा व्यवस्थाओं के प्रभाव की भिन्नता का मुख्य निर्धारक होती है। अन्तक्रिया व्यवस्था की संरचनागत जटिलताओं तथा विशिष्टताओं के कारण ही कोई भी संगठन समूहों और समुदायों से भिन्न है। संगठन के अन्तर्गत कार्य विभाजन में बढ़ोतरी अन्तक्रिया के तानेबाने की जटिलता को बढ़ाते हैं। कुछ विश्लेषणों में आकार को संगठन की जटिलता से जोड़कर देखा जाता है। किन्तु तथ्यगत सर्वेक्षणों में संगठन की संरचना की जटिलता के लिए कार्य विभाजन को आकार से ज्यादा महत्वपूर्ण पाया गया।

संगठन की सदस्यता की समस्या ऊपरी तौर पर बहुत जटिल नहीं लगती–व्यक्ति या तो सदस्य है या नहीं है। किन्तु यह भी एक तथ्य है कि एक ही व्यक्ति एक साथ कई संगठनों तथा समूहों का सदस्य हो सकता है। यही भूमिका द्वन्द्व का कारक है। क्योंकि विभिन्न संगठनों की सदस्यता एक व्यक्ति से एक ही समय में अलग–अलग और सम्भवतः परस्पर विरोधी भूमिकाओं के लिए दबाव डाल सकती है। होमंस ने सदस्यता को परिभाषित करने के लिए अन्तक्रिया की बारम्बारता को कसौटी माना है। इस दृष्टि से मर्टन की स्थापनाओं से जोड़ने पर संगठन की सदस्यता के दो आधार माने जा सकते हैं:

- **अन्तक्रिया की आवृति (या बारम्बारता)**
- **अन्तक्रिया का अर्न्ततत्व (या स्वरुप)**

पुनरावृत्ति की पर्याप्तता और अन्तर्तत्व की समानता वाली अन्तक्रिया की इकाइयाँ ही एक अन्तक्रिया व्यवस्था है। इस दृष्टि से एक संगठन के अवयव 'व्यक्ति' न होकर 'अन्तक्रिया की इकाइयाँ' होती हैं। संगठन के सीमा निर्धारण में मूल प्रश्न अन्तक्रिया की आवृत्ति की एक या अधिक व्यवस्थाओं पर निर्भरता ही है। यह अंकन अन्तक्रिया की निरन्तरता पर मुख्य या सम्पूर्ण नियंत्रण के आधार पर किया जाना चाहिए। एक से अधिक व्यवस्थाओं द्वारा नियंत्रित होने वाली अन्तक्रियाएं परिभाषा के अनुसार अन्तर्व्यवस्था अर्थात् दो या अधिक व्यवस्थाओं की अन्तक्रिया संगठन का पर्यावरण संगठन को बहार से प्रभावित करने वाले तथ्यों की सरंचना को चिन्हित करना है। संगठनों की स्वायत्तता में पर्यावरण प्रधान तथ्य हैं। किन्तु यह सुनिश्चित एवं स्थायी नहीं होता। पर्यावरण की परिवर्तनशीलता और संगठन से सम्पर्क के क्षेत्रों के आधार पर पर्यावरण और संगठन के रिश्ते बदलते हैं। किसी व्यक्ति के लिए संगठन की सदस्यता हासिल करने की सम्भावना पर पर्यावरण–संगठन अन्तर्सम्बन्ध का सीधा प्रभाव रहता है।

इस प्रकार सदस्यों की क्रिया संरचना ही संगठन है। क्रिया संरचना आठ प्रक्रियाओं में विभाजित की जा सकती है–लक्ष्य, प्रबन्ध, संचार, निर्णय प्रक्रिया, संयोजन, नियंत्रण, अनुकूलन और द्वन्द्व। लक्ष्य से जुड़ी प्रक्रियाओं में ऐसी सभी गतिविधियाँ शामिल हैं, जो संगठन के बुनियादी लक्ष्य से सम्बन्धित हों। लक्ष्य पर्यावरण के चार अवयव हैं : उपभोक्ता, आवश्यक संसाधनों के आपूर्तिकर्ता, उपभोक्ता एवं संसाधनों के प्रतिद्वन्द्वी तथा नियोजक समूह (जैसे संघ, एजेंसियों आदि)। समाजीकरण तथा नयी भर्ती जैसे कार्यों को प्रबन्ध के अन्तर्गत माना जाता है। सदस्यों में परस्पर सम्पर्क तथा संचार के औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के माध्यम रहते हैं। संगठन के प्रधान लक्ष्य के सन्दर्भ में विभिन्न परिस्थितियों एवं विकल्पों के बीच निर्णय की व्यवस्था भी क्रिया संरचना का अंग है। संयोजन प्रक्रियाओं का उद्देश्य परस्पर सम्बन्धित घटनाओं के ताने–बाने की देखभाल है। नियंत्रण प्रक्रियाएं संयोजन कार्यों की ही पूरक होती हैं। अनुकूलन प्रक्रिया पर्यावरण सम्बन्धी कारकों से सम्बन्धित है। आन्तरिक और बाह्य द्वन्द्व, असहमतियों और द्वन्द्व समाधान के प्रयत्नों से जुड़े व्यवहार प्रकारों को द्वन्द्व की प्रक्रियाएं कहते हैं। एक संगठन के सदस्य दूसरे संगठनों से भी अन्तक्रिया करते हैं। इसलिए संगठन व्यवहार के अध्ययन के प्रारूप में पर्यावरण के साथ के सम्बन्ध की व्याख्या को भी सम्मिलित करना चाहिये।

विश्वविद्यालय का संगठन मैक्सवेबर की भाषा में वैधानिक सत्ता की कृति है। राज्य सरकार के अधिनियम द्वारा इसका उद्देश्य, कार्यक्षेत्र, अधिकार एवं स्वरुप परिभाषित होता है। इसके संचालन को सुव्यवस्थित रखने के लिये विभिन्न समितियों एवं पदों की सत्ता प्रदत्त रहती है। विश्वविद्यालय का जीवन इन्हीं सत्तावान

समितियों एवं पदों पर आसीन व्यक्तियों के निर्देशन में संचालित होता है। सामान्यतया विश्वविद्यालय की गतिविधियाँ विभिन्न उपाधियों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारण, विद्यार्थियों की भर्ती, अध्यापकों–कर्मचारियों की नियुक्ति, शिक्षण प्रबन्ध, परीक्षा आयोजन एवं उपाधि दान के रूप में होती है।

निश्चय ही विश्वविद्यालय व्यवस्था और दफ्तरशाही प्रशासनिक संगठनों में साफ भेद के बावजूद कई समानताएं हैं। यह अन्य कई प्रशासनिक इकाइयों की भांति राज्य द्वारा अधिनियमित होती है। औपचारिक स्तरीकरण जैसे प्राध्यापक (प्रोफेसर), सहायक प्राध्यापक (असिस्टेंट प्रोफेसर), व्याख्याता (लेक्चरर), शोध छात्र, गैर शिक्षक कर्मचारी, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी आदि भी हैं। परस्पर सम्पर्क, अन्तक्रिया तथा नियंत्रण की औपचारिक पद्धतियाँ प्रदत्त होती हैं। एक सदस्य को दूसरे सदस्य के सन्दर्भ में निश्चित सत्ता प्रदत्त रहती है और उसी के अनुकूल आचरण अपेक्षित हैं। नियुक्तियों में योग्यता एकमात्र कसौटी रहती है, अधिकारियों का निर्वाचन की बजाय चयन किया जाता है। पूर्व निर्धारित वेतन, संगठन द्वारा वेतन भुगतान, सत्ता स्तरों का महत्व और सम्मान तथा नियुक्त व्यक्तियों द्वारा पूरे समय विश्वविद्यालय के ही कार्य में संलग्नता भी इस धारणा को पुष्ट करते हैं।

प्रशासनिक इकाई की दृष्टि से विश्वविद्यालयों का अध्ययन करने पर स्वायत्तता से जुड़ी संचालन शैली तथा संगठन रचना की समझ में नहीं हो सकती। प्रशासनिक इकाइयाँ स्वायत्त नहीं होती। विश्वविद्यालय की विभिन्न इकाइयों में भी सीढ़ीवार सत्ता वितरण नहीं होता बल्कि आधार की इकाइयों को भी सत्ता वितरण में पर्याप्त स्थान मिलता है। इस प्रकार सत्ता वितरण तथा सत्ता केन्द्र के स्वरूप में अन्तर है। विश्वविद्यालयों की सेवाओं का एक स्पष्ट उपभोक्ता समूह होता है। इसलिए विश्वविद्यालय संगठन जनमत निर्माण के माध्यमों के प्रति सरकारी दफ्तर से ज्यादा संवेदनशील भी है। वैसे यह भी सच है कि सरकारी अनुदानों पर पूरी तरह आश्रित होने की स्थिति में विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता तथा सत्ता संरचना की विशिष्टता घूमिल पड़ जाती है। उस दशा में निश्चय ही किसी विश्वविद्यालय और सरकारी दफ्तर में बहुत फासला नहीं बच पाता।

विश्वविद्यालय के प्रशासनिक प्रतिरूप से असहमत कुछ समाज वैज्ञानिकों ने इसको 'शैक्षणिक समुदाय' के रूप में विश्लेषित करना चाहा है। यह दृष्टि विश्वविद्यालय संचालन को समुदाय के सभी सदस्यों की पूरी हिस्सेदारी के आधार पर संयोजित करने की समर्थक हैं। यानी प्रशासनिक अधिकारियों का विशेषाधिकार, सत्ता संस्तरण में विशिष्ट स्थान और प्रबन्ध में प्रधान भूमिका अहितकारी है। व्यक्ति के पदेन गुणों एवं निजी ज्ञान तथा कौशल के बीच के अन्तर के महत्व की ओर ध्यान देते हुए माना गया है कि वैज्ञानिक, अध्यापक, इंजीनियर, डाक्टर जैसे कार्यों–व्यवसायों में औपचारिक पद की बजाय ज्ञान एवं कुशलता ज्यादा प्रभावशाली तत्व हैं। ऐसे व्यक्तियों के संगठनों का प्रशासनिक संगठनों की स्तरीकृत संरचना से अलग ढांचा होता है। यह संगठन दफ्तरशाही प्रशासन के ऊँच–नीच, संस्तरण की बजाय प्रायः समान व्यक्तियों का समूह होते हैं। अन्यथा विश्वविद्यालय संचालन में प्रशासनिक तत्वों की बहुलता शिक्षा प्रक्रिया के अवैयक्तिकरण तथा विद्यार्थियों में व्यवस्था से अलगाव पैदा करती है।

विश्वविद्यालय संचालन के सन्दर्भ में द्वन्द्व सिद्धान्त के इस्तेमाल का अर्थ स्थाग्नित्व की जगह परिवर्तन, मूल्यों की सर्वमान्यता की बजाय समूहगत भिन्नता, परस्पर सहमति की बजाय व्यवस्था में व्यवधान और हितसमूहों की भूमिका पर प्रकाश डालना होता है।

समुदाय शक्ति के सन्दर्भ में किए गए अध्ययनों से विश्वविद्यालय संगठन के विश्लेषण में (1) व्यवस्था में शक्ति के स्वरूप (2) हितसमूहों की भूमिका और (3) लक्ष्य निर्धारक प्रक्रियाओं के अध्ययन का निर्देश लिया जा सकता है। इस अध्ययन शैली की मान्यता है कि विश्वविद्यालय एकाधिक तथा अस्पष्ट लक्ष्यों वाले संगठनों के श्रेणी की व्यवस्था है।

हितसमूह सिद्धान्त की स्थापनाएं विश्वविद्यलाय व्यवस्था में हितसमूहों के निर्माण की अपरिहार्यता, विशेषाधिकारों एवं सुविधाओं के लिए द्वन्द्व की अनिवार्यता और बाह्य समूहों द्वारा विश्वविद्यालय संचालन को प्रभावित करने की तार्किक व्याख्या सम्भव बनाती हैं। यह दृष्टिकोण विश्वविद्यालय को एक 'सामन्ती व्यवस्था तथा 'अवसर स्रोत की संरचना' के रूप में देखता विक्टर बाल्डरिज ने इन तीनों परिप्रेक्ष्यों के समन्वय से

विश्वविद्यालय व्यवस्था के अध्ययन के लिए राजनीतिक प्रतिरूप विकसित किया है। राजनीतिक प्रतिरूप में शक्ति के स्वरुप, द्वन्द्व की प्रक्रियाओं और आन्तरिक समूहों तथा बाह्य समूहों की भूमिका पर दृष्टि केन्द्रित की गयी है। बाल्डरिज की दृष्टि में समूची व्यवस्था का केन्द्र लक्ष्य और नीति के निर्णयों की प्रक्रिया में निहित रहता है। यह दृष्टि संगठनों को अन्तक्रिया की जटिल व्यवस्था मानने के सबसे नजदीक है। लेकिन इस दृष्टि का कुछ ही सन्दर्भो में प्रयोग हुआ है, इसलिए ऐसे प्रतिरूप पर आधारित विश्लेषणों के मूल्यांकन के लिए विभिन्न देश, काल, पात्र के सन्दर्भ में कुछ और अध्ययन आवश्यक होंगे।

विश्वविद्यालय से सम्बद्ध तमाम प्रक्रिया एक निश्चित और जटिल ढांचे के अन्तर्गत ही सम्पन्न होती है। यह संगठनगत संरचना औपचारिक सत्ता वितरण के अतिरिक्त द्वन्द्व समाधान, नीति निरुपण और निर्णय कार्यान्वयन का माध्यम प्रदान करती है। संगठन के सत्ता वितरण का स्वरूप समूची अन्तक्रिया के रूप को प्रभावित करता है। एक अत्यधिक वर्गीकृत जटिल संगठन में इकाइयों की अधिकता और स्वायत्तता के कारण परस्पर दूरी बढ़ जाती है और द्वन्द्व में कमी आती है किन्तु परस्पर संचार अवरुद्ध होने अथवा संगठन की विभिन्न इकाइयों द्वारा एक दूसरे के प्रभाव क्षेत्र में हस्तक्षेप की चेष्टाएं द्वन्द्व की सम्भावना को बढ़ा देती हैं। (1) शैक्षणिक संरचना (2) प्रशासनिक व्यवस्था (3) नीति निर्धारण (4) सत्ता संस्तरण और (5) प्रभावक्षेत्र। विश्वविद्यालय की सामाजिक संरचना के प्रमुख अंगों में से हैं। इन तथ्यों की जानकारी विभिन्न उपसमूहों की हितगत भिन्नता तथा पर्यावरण के प्रभाव की सम्भावना को आंकने का स्रोत हैं। उदाहरण के लिए अध्यापन और शोध (कार्य के आधार पर) विज्ञान एवं मानविकी (विषय ज्ञान के आधार पर) शहरी और ग्रामीण (निजी पृष्ठभूमि के आधार पर) व्यावसायिक और गैर व्यावसायिक (विशिष्टता के आधार पर) जैसे कई प्रकार के उपसमूह अलग अलग मूल्यों और उद्देश्यों पर रचित होते हैं। कोई भी संगठन एक निश्चित पर्यावरण से संलग्न रहता है। संगठनों जोड़ती है, लक्ष्यों की प्राप्ति की रणनीति बनाती है। इस प्रकार संगठनों की नियति निर्धारक नीतियाँ ही हैं। नीति निर्माण संगठन को एक सुनिश्चित कार्यक्रम से जोड़ने वाली प्रक्रिया है। पूर्व स्वीकृत कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए किये जाने वाले रोजमर्रा के निर्णयों से यह भिन्न है। सभी व्यक्ति एवं हितसमूह नीति–निर्माण के अवसर पर अपने मूल्यों के अनुकूल निर्णय के लिए सचेष्ट रहते हैं । अर्थात् नीति द्वन्द्व का प्रधान बिन्दु होती है।

विश्वविद्यालय संचालन की मूल शैली राज्य की भूमिका से जुड़ी रहती है। जनतांत्रिक व्यवस्था वाली सरकारें भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसी समितियों की आड़ से शिक्षा संचालन को काबू में रखती हैं। यह व्यवस्था इंगलैण्ड और भारत में देखी जा सकती है। कम्युनिस्ट और फौजी तानाशाही वाले समाजों में शिक्षा राज्य के सम्पूर्ण नियंत्रण में है। गैर सरकारी स्रोतों से धन प्राप्त करने वाले शिक्षा केन्द्रों का संचालन धनपतियों के बीच से चुनी गयी व्यवस्थापिका या प्रबन्ध समिति करती है। यह सभी पर्यावरण के तत्व हैं। लेकिन इनमें से एक की उपस्थिति या दूसरे की गैरहाजिरी पूरी सत्ता संरचना और संचालन प्रक्रिया को बदलने की क्षमता रखती है। इसलिए उपरोक्त सभी पहलुओं के साथ ही यह भी देखना जरुरी हो जाता है कि विश्वविद्यालय का आर्थिक आधार किन स्रोतों से पुष्टि पाता है। इसी प्रकार पर्यावरण में उपलब्ध अन्य शिक्षा केन्द्रों का भी किसी एक विश्वविद्यालय के संचालन पर पड़ने वाला असर एक अलग शोध का विषय बन सकता है।

विश्वविद्यालय अध्ययन के राजनीतिक प्रतिरूप में यह मान्यता निहित है कि एक जटिल सामाजिक संरचना संगठनगत उपसमूहों पर विभिन्न प्रकार के दबाव उत्पन्न करती है। अहित की निरन्तरता से उपसमूह के सदस्यों में एकजुटता बढ़ती है। हितसमूहों के रूप में नीति निर्धारकों पर विभिन्न प्रकार के दबावों का उपयोग करके हित साधन की चेष्टाएं की जाती हैं। हितसाधन की इस प्रतिद्वन्द्विता का समाधान नीति नियमन प्रक्रिया द्वारा इन दबावों को नीतियों में बदलकर होता है। किन्तु नीति कार्यान्वयन का चरण पुनः नये द्वन्द्व उत्पन्न करता है। इसकी सही समझ के लिए नीति कार्यान्वयन की औपचारिक और नियमित अर्थात् दफ्तरशाही प्रशासनिक पद्धति की बजाय नीति निरुपण की प्रक्रिया से जुड़ी गतिविधियों के अध्ययन को प्रधानता देना होगा। इसीलिए विश्वविद्यालय जैसे संगठनों के अध्ययन के सन्दर्भ में 'प्रबन्ध' या 'व्यवस्थापन' की बजाय 'विश्वविद्यालय संचालन' की जानकारी ज्यादा सार्थक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सोशल मूवमेन्ट्स (1998): इण्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइसेंज, मैकमिलन, न्यूयार्क
2. मोहित सेन (2001): कम्युनिज्म एण्ड दि न्यूलेफट, कम्युनिष्ट पार्टी पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. लिपसेट (1998):स्टुडेन्ट्स एण्ड पॉलिटिक्स इन कम्परेटिव पर्सपेक्टिव, डाएडलस, शरद अंक, पृ. 1–21
4. क्लार्क केर (2000): स्टुडेन्ट डिसेंट एण्ड कंफ्रटेशन पॉलिटिक्स, प्रोटेस्ट, सं. जुलिया फास्टर–डुर्बर्डलांग, विलियम मारो एण्ड कं., न्यूयार्क
5. होमन्स (1998): दि ह्यूमन ग्रुप, सतलेज एण्ड केगन पाल, लंदन
6. मैक्स वेबर (1992): 'बेसिक कंसेप्ट्स इन सोशियोलॉजी', पृष्ठ 115
7. बेली, स्टीफेन के.(2003): ए कम्पेरिजन ऑफ दि युनिवर्सिटी विद ए गवर्नमेंट ब्यूरो, दि युनिवर्सिटी एज एन आर्गनाइजेशन, सें. जेम्स ए. पार्किस, मैक्ग्रा हिल, केलिफोर्निया, पृ. 121–36
8. लेविस कोजर (1986): 'फंक्शस ऑफ सोशन कंलिक्ट', फ्रीप्रेस, ग्लेनको

❖◆❖